IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

अर्थशास्त्र में वर्णित अंतर्देशीय व्यापार का विश्लेषण

विनायक कुमार उपाध्याय
शोध छात्र,
प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
नेहरू ग्राम भारती, मानित विश्वविद्यालय
प्रयागराज (उ0प्र0)

कौटिल्य कालीन भारतवर्ष में व्यापारी वर्ग को अपने राष्ट्र के नियमों का पालन करते हुये बड़ी निष्ठा से व्यापार करना पड़ता था। राज्य की प्रजा परिश्रम से अधिक उत्पादन करती थी, जो चीजे राष्ट्र में अधिक मात्रा में उत्पादित होती थी, उनकी बिक्री के लिये अन्य राष्ट्रों में भी भेजा जाता था। व्यापारिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से अधिक उत्पादित वस्तुओं की बिक्री के लिए स्थान निश्चित करना भी आवश्यक था। परदेश में किस तरह से व्यापार हो, कौटिल्य ने इस विषय पर अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया हैः–

''निर्यात–व्यापार के संबंध में पण्याध्यक्ष को पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि स्वदेश तथा विदेश में बेची जाने वाली किन चीजों के मूल्य में परस्पर भिन्नत है; इसके अतिरिक्त बिक्री कर, सीमांत अधिकारी की टैक्स, सुरक्षा के लिए पुलिस को मार्ग कर, जंगल के रक्षक का कर, नदी पार करने का कर, अपने भोज नादि का व्यय और भाड़ा आदि निकाल कर कितना बचत होगा; इस पर भी विचार करें।''[1]

ट

यवसाय करने वाले को सर्वप्रथम हानि लाभ का ध्यान रखते हुए और क्रय–विक्रय किए जाने वाले सामान पर समस्त प्रकार का व्यय जोड़कर उसका वास्तविक मूल्य लगाना आवश्यक होता है। जब तक लाभ दृष्टिगत नहीं होता, तब तक कुशल व्यापारी व्यापार करने के लिए उद्धत नहीं होता है। ऐसे व्यापार से क्या लाभ, जिसमें व्यापारिक खर्चों को काटकर कुछ लाभ न हो। कई बार प्रयोगात्मक और नवीन कार्य के कारण भविष्य में लाभ की आशा से व्यक्ति कुछ हानि उठाने को तैयार रहता है अथवा दूसरे के साथ वस्तु विनिमय द्वारा या अपने सामान को लोकप्रिय तथा प्रचारित करने के उद्देश्य से व्यापारी हानि को सह सकता है। व्यापार में बिना कुछ खोए कुछ पाना भी संभव नहीं है। कौटिल्य ने यह स्पष्ट किया हैः–

अपने व्यापार में लाभ नहीं दिखे तो अपने माल को विदेश में ले जाकर, भविष्य में लाभ की प्रतीक्षा करते हुए, उसके विक्रय की व्यवस्था करें; या अपने माल से वहाँ के लोकप्रिय माल को बदल कर उस रूप में अपने लाभ की बात सोचे। यदि योजना सफल होती दिखाई दे तो लाभ का चौथा भाग व्यय करके सुरक्षित स्थल मार्ग के द्वारा व्यापार करना आरम्भ कर दे।[2]

इससे यह विदित होता है कि व्यापार करने वाला व्यक्ति वस्तु विनिमय और अपने लाभ के लिए कुछ पूँजी का विनियोग के माध्यम से व्यय करता है क्योंकि व्यापार पर किया हुआ व्यय या धन कुछ समय के पश्चात् अधिक धन की प्राप्ति करता है। इसीलिए कौटिल्य ने व्यापार को वस्तु विनिमय और विनियोग से अधिक अर्थ प्राप्त करने के उद्देश्य से राष्ट्र ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भी व्यापार करके लाभ प्राप्त करने की योजनाएं क्रियान्वित की थी। व्यापारी अर्थ लाभ के लिए विनियोग के माध्यम से ही नहीं वरन् अपनी प्रतिष्ठा से भी व्यापार की वृद्धि करता है।

अर्थशास्त्र में विदेश माल एवं व्यापारियों के संबंध में कुछ बाते कही गई हैं, जो इस प्रकार हैः

'विदेशी माल के आयात में कर आदि की कुछ रियायत होनी चाहिए। नाव तथा जहाज आदि से माल आयातित करने वाले व्यापारियों पर राजकर की छूट होनी चाहिए। विदेश से आये व्यापारियों को भी राजा बिना प्रतिषेध के ऋण देने की व्यवस्था करें; किंतु विदेशी व्यापारियों के सहयोगियों पर प्रतिषेध होना चाहिए।''[3]

यापार में अच्छे व्यापारी अपने नाम, अपनी प्रतिष्ठा एवं साख के लिए बड़े से बड़े त्याग के लिए तैयार रहते है क्योंकि व्यापारी एक बार साख जमने और व्यापारिक प्रतिष्ठा बनने के पश्चात् लाखों रूपयों का माल उधार ले सकता है। इसीलिए आज के युग में भी साख और व्यापारिक प्रतिष्ठा का व्यापार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। अच्छे व्यापारिक प्रतिष्ठान अपनी साख और प्रतिष्ठा की स्थापना के लिए ईमानदारी का व्यवहार अपनाते है। कौटिल्य ने भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में व्यापारी को अपनी साख तथा अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा बनाने के लिए किसी प्रकार भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक नियमों के विरूद्ध कार्य नहीं करना चाहिए। यहॉ तक कि जिस देश में व्यापारी व्यापार करे नियमतः उस देश के समस्त प्रकार के शुल्कों को चुकाने के पश्चात ही अपने देश में आए। यदि कोई व्यापारी ऐसा नहीं करता है तो इससे उस व्यक्ति पर ही नहीं वरन् उसके अपने देश तथा व्यापार पर भी प्रभाव पड़ता है। इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विषय में कौटिल्य में निम्न विचार व्यक्त किए है–

दूसरे देश में व्यापार करता हुआ व्यापारी उस देश के सभी टैक्स (राज्यकर) को नियमपूर्वक अदा करते हुए अपने व्यापार को सम्भाले रखे, उसके पश्चात् ही स्वयं अपने देश लौटे।[4]

प्रायः लोभ वृत्ति के कारण मनुष्य राष्ट्र प्रेम को भुलाकर अन्य देशों से व्यापार करता हुआ वहां के व्यापारियों से माल या धन उधार लेकर अथवा व्यापार करते हुए उस देश के राज्यकरों का भुगतान किए बिना अपने देश वापस चला आता है, फिर वापस उस देश में व्यापार करने नहीं जाता है तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र का अपमान होता है तथा भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक सम्बन्धों में बाधा उत्पन्न होती है।

इस प्रकार कौटिल्य ने राष्ट्रीय सम्मान, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और सुसम्बन्ध बनाए रखने के लिए इस प्रकार की व्यवस्था की थी। इस उद्धरण से राष्ट्र प्रेम, व्यापारिक साख और प्रतिष्ठा, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक सम्बन्ध, वाणिज्य शास्त्र का पूर्ण ज्ञान, व्यापारिक नियमों का प्रतिपालन, ईमानदारी जैसे गुणों का ज्ञान होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले व्यापारी को अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का पूर्ण ज्ञान रहता था और वे अपने राष्ट्र के सम्मान का पूर्ण ध्यान रखते हुए कार्य करते थे। वे अपने देश में अन्य देशों से उन सामग्रियों को लाते थे जिनका अपने देश में अभाव होता था और अपने राष्ट्र में अधिक उत्पादित तथा आवश्यकता से अधिक सामग्री को अर्थ प्राप्ति के उद्देश्य से दूसरे देशों में भेजते थे।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले व्यापारियों के विषय में कौटिल्य ने यहां तक कहा है कि उन व्यापारियों को सभी प्रकार के जल, थल मार्गों का ज्ञान, यात्रा का समय, यात्रा व्यय तथा उस देश के आचार व्यवहार का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

जल मार्ग से व्यापार करने वाले को नाव आदि का किराया, मार्ग का भोजन व्यय, अपने और दूसरे वस्तु के विक्रय का मूल्य प्रमाण, यात्रा का समय, भय दूर करने का उपाय और गन्तव्यदेश के आचार व्यवहारों की जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् ही यात्रा करनी चाहिए।[5]

इस प्रकार कौटिल्य अर्थशास्त्र के उद्धरणों से यह ज्ञात होता है कि उस युग में राष्ट्रीय व्यापार का ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अच्छा ज्ञान था और उनके निर्देशों के अनुसार व्यापारी सफलतापूर्वक व्यापार करते हुए उस युग की दुर्गम यात्रा, कष्टसाध्य कार्य, अपरिचित स्थान, अन्य देशों की वेशभूषा, भाषा का ज्ञान और आचार व्यवहार को भी भलीभांति जानता था। धैर्य, उत्साह, व्यापारिक कुशलता और अर्थ प्राप्ति की लगन से उसके गुणों का ज्ञान होता है।

संदर्भ सूची–

1.

परविषये तु–पण्यप्रतिपण्ययोरर्धमूल्यं च आगमय्य शुल्कवर्त –

यातिवाहिकगुल्मतरदेयभक्तभाटकव्ययशुद्धमुदयं पश्यते्। कौ.अ.2/32/16/5

2.

असत्युदये भाण्डनिर्वहणेन पण्यप्रतिपण्यार्घेण वा लाभं पश्येत्।

ततः सारपादेन स्थलव्यवहारमध्वना क्षेमेण प्रयोजयेत्। कौ.अ.2/32/16/5

3.

परभूमिजं पण्यमनुग्रहेणावाहयेत्। नाविक सार्थवाहेम्यश्च परिहार–

मायतिक्षमं दद्यात्। अनभियोगश्चार्थिष्वागन्तूनामन्यत्रसभ्योपकारिभ्यः।

कौ.अ.2/32/16/3

4.

आत्मनो वा भूमिमप्राप्तः सर्वदेयविशुद्धं व्यवहरेत्। कौ.अ.2/32/16/1

5.

वारिपथे च यानभाटकपथ्यदनपण्यप्रतिपण्यार्धप्रमाणयात्रा–

कालभयप्रतीकारपण्यपत्तनचारित्राण्युपलभेत। कौ.अ.2/32/16/2

6.

Bandyopadhyay, Pramathanath, International Law and Custom in Ancient India, Calcutta University Press, 1920.